इस अध्याय में...

इस अध्याय में हम पिछले दो दशकों की भारतीय राजनीति का एक संक्षिप्त जायज़ा लेंगे। इस अवधि में कुछ जटिल किस्म के बदलाव आए। कई कारकों ने एक साथ मिलकर इस अवधि में अप्रत्याशित परिणाम दिए। राजनीति के इस नए दौर का पूर्वानुमान कर पाना असंभव था और अब भी इसे समझना बहुत कठिन है। इस दौर के बदलाव बड़े विवादास्पद हैं, क्योंकि इनके साथ संघर्ष के कुछ गहरे मसले जुड़े हुए हैं और हम सब अभी इन बदलावों से इतने दूर नहीं जा पाए हैं कि इनके स्वरूप को साफ़-साफ़ परख सकें। बहरहाल इस दौर के राजनीतिक बदलावों को लेकर हम कुछ बुनियादी सवाल कर सकते हैं:

- गठबंधन की राजनीति के उदय का हमारे लोकतंत्र पर क्या असर पड़ा है?
- मंडलीकरण क्या है? इसने राजनीतिक प्रतिनिधित्व के स्वभाव को किन रूपों में बदला है?
- राजनीतिक लामबंदी के लिहाज़ से रामजन्मभूमि आंदोलन और बाबरी मस्ज़िद विध्वंस ने क्या विरासत छोड़ी है?
- नीतिगत मामलों पर एक सर्व-सहमति सी बन गई है–इसका राजनीतिक विकल्पों के चयन के लिहाज़ से क्या असर हुआ है?

यह अध्याय इन सवालों के जवाब नहीं देता। इस अध्याय में आपको कुछ ज़रूरी सूचनाएँ दी गई हैं और कुछ तरीके बताए गए हैं, ताकि जब आप इस किताब को आखिर तक पढ़ लें, तो आप ये सवाल पूछ सकें और इनके जवाब तलाश सकें। ये सवाल राजनीतिक लिहाज़ से संवेदनशील हैं, लेकिन मात्र इसी कारण से हम इन सवालों को पूछने से बच नहीं सकते। आज़ादी के बाद की भारतीय राजनीति के इतिहास को आखिर पढ़ने का मकसद ही यही है कि हम अपने वर्तमान को समझ सकें।

1990 के दशक में विभिन्न राजनीतिक दलों में बड़ी अफ़रा-तफ़री मची। इस कार्टून की ही तरह कइयों को यह सब ऊँची चरखी की सवारी जैसा जान पड़ा। यहाँ कार्टून में राजीव गाँधी, वी.पी. सिंह, एल.के. आडवाणी, चंद्रशेखर, ज्योति बसु, एन.टी. रामाराव, देवीलाल, पी.के. महंत और के. करुणानिधि को चरखी पर सवार दिखाया गया है।

© NCERT not to be republished

भारतीय राजनीति : नए बदलाव

अध्याय 9

1990 का दशक

आपने पिछले अध्याय में पढ़ा था कि इंदिरा गाँधी की हत्या के बाद राजीव गाँधी प्रधानमंत्री बने। इंदिरा गाँधी की हत्या के कुछ दिनों बाद ही 1984 में लोकसभा के चुनाव हुए। राजीव गाँधी की अगुवाई में कांग्रेस को इस चुनाव में भारी विजय मिली। 1980 के दशक के आखिर के सालों में देश में ऐसे पाँच बड़े बदलाव आए, जिनका हमारी आगे की राजनीति पर गहरा असर पड़ा।

पहला, इस दौर की एक महत्त्वपूर्ण घटना 1989 के चुनावों में कांग्रेस की हार है। जिस पार्टी ने 1984 में लोकसभा की 415 सीटें जीती थीं वह इस चुनाव में महज 197 सीटें ही जीत सकी। 1991 में एक बार फिर मध्यावधि चुनाव हुए और कांग्रेस इस बार अपना आँकड़ा सुधारते हुए सत्ता में आयी। बहरहाल, 1989 में ही उस परिघटना की समाप्ति हो गई थी, जिसे राजनीति विज्ञानी अपनी खास शब्दावली में 'कांग्रेस प्रणाली' कहते हैं। यह बात तो प्रकट ही है कि कांग्रेस एक महत्त्वपूर्ण पार्टी के रूप में कायम रही और 1989 के बाद भी देश पर किसी अन्य पार्टी के बजाय उसका शासन ज़्यादा दिनों तक रहा। लेकिन, दलीय प्रणाली के भीतर जैसी प्रमुखता इसे पहले के दिनों में हासिल थी, वैसी अब न रही।

कांग्रेस नेता सीताराम केसरी ने देवगौड़ा की संयुक्त मोर्चा सरकार से अपना समर्थन वापस ले लिया।

दूसरा बड़ा बदलाव राष्ट्रीय राजनीति में 'मंडल मुद्दे' का उदय था। 1990 में राष्ट्रीय मोर्चा की नयी सरकार ने मंडल आयोग की सिफ़ारिशों को लागू किया। इन सिफ़ारिशों के अंतर्गत प्रावधान किया गया कि केंद्र सरकार की नौकरियों में 'अन्य पिछड़ा वर्ग' को आरक्षण दिया जाएगा। सरकार के इस फ़ैसले से देश के विभिन्न भागों में मंडल-विरोधी हिंसक प्रदर्शन हुए। अन्य पिछड़ा वर्ग को मिले आरक्षण के समर्थक और विरोधियों के बीच चले विवाद को 'मंडल मुद्दा' कहा जाता है। इसने 1989 के बाद की राजनीति में अहम भूमिका निभाई।

तीसरा, विभिन्न सरकारों ने इस दौर में जो आर्थिक नीतियाँ अपनायीं, वे बुनियादी तौर पर बदल चुकी थीं। इसे ढाँचागत समायोजन कार्यक्रम अथवा नए आर्थिक सुधार के नाम से जाना

© NCERT not to be republished

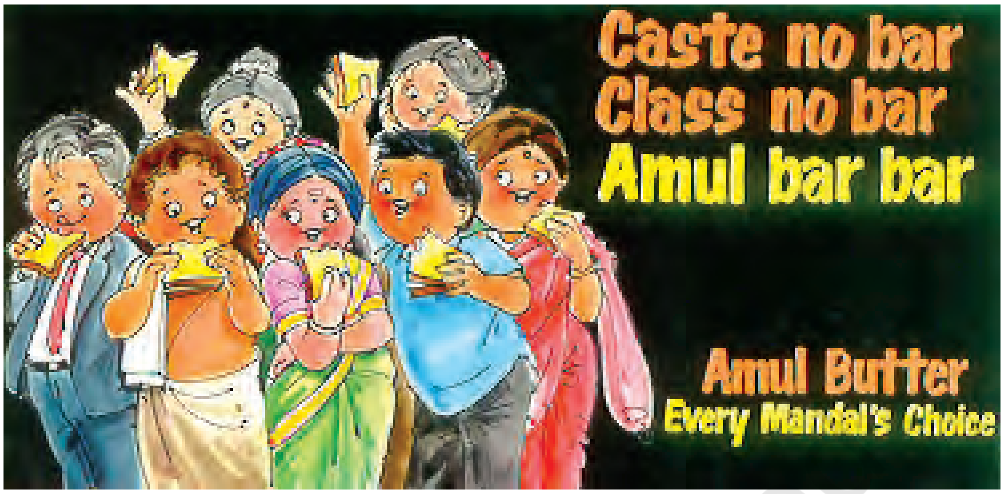

मंडलीकरण पर एक प्रतिक्रिया

गया। इनकी शुरुआत राजीव गाँधी की सरकार के समय हुई और 1991 तक ये बदलाव बड़े पैमाने पर प्रकट हुए। आज़ादी के बाद से अब तक भारतीय अर्थव्यवस्था जिस दिशा में चलती आई थी, वह इन नए आर्थिक सुधारों के कारण मूलगामी अर्थों में बदल गई। नयी आर्थिक नीतियों की विभिन्न आंदोलनों और संगठनों की तरफ़ से भरपूर आलोचना हुई। बहरहाल इस अवधि में जितनी सरकारें बनीं, सबने नयी आर्थिक नीति पर अमल जारी रखा।

चौथे, घटनाओं के एक सिलसिले की परिणति अयोध्या स्थित एक विवादित ढाँचे (बाबरी मस्जिद के रूप में प्रसिद्ध) के विध्वंस के रूप में हुई। यह घटना 1992 के दिसंबर महीने

साभारः आर. के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ़ इंडिया

तत्कालीन वित्तमंत्री मनमोहन सिंह और प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव को 'नयी आर्थिक नीति' के शुरुआती दौर में दिखाता एक कार्टून।

में घटी। इस घटना ने देश की राजनीति में कई परिवर्तनों को जन्म दिया और उनका प्रतीक बनी। इस घटना से भारतीय राष्ट्रवाद और धर्मनिरपेक्षता पर बहस तेज़ हो गई। इन बदलावों का संबंध भाजपा के उदय और हिंदुत्व की राजनीति से है।

इस सिलसिले की आखिरी बात यह है कि मई 1991 में राजीव गाँधी की हत्या कर दी गई और इसके परिणामस्वरूप कांग्रेस पार्टी के नेतृत्व में परिवर्तन हुआ। राजीव गाँधी चुनाव

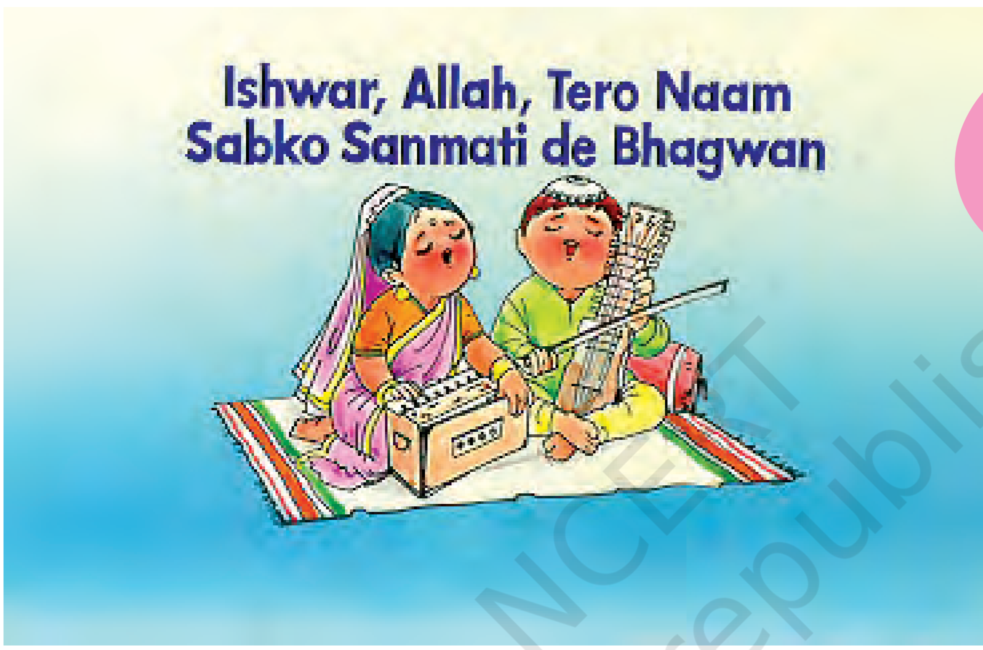

बढ़ती हुई सांप्रदायिकता पर चिंता ज़ाहिर करता एक विज्ञापन

अभियान के सिलसिले में तमिलनाडु के दौरे पर थे। तभी लिट्टे से जुड़े श्रीलंकाई तमिलों ने उनकी हत्या कर दी। 1991 के चुनावों में कांग्रेस सबसे बड़ी विजयी पार्टी के रूप में सामने आयी। राजीव गाँधी की मृत्यु के बाद कांग्रेस पार्टी ने नरसिम्हा राव को प्रधानमंत्री चुना।

25 अक्तूबर 1995

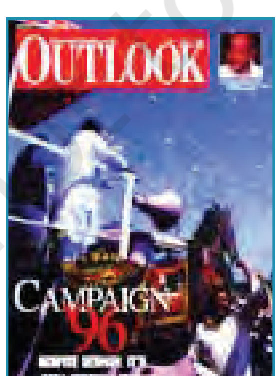

1 मई 1996

20 अगस्त 2001

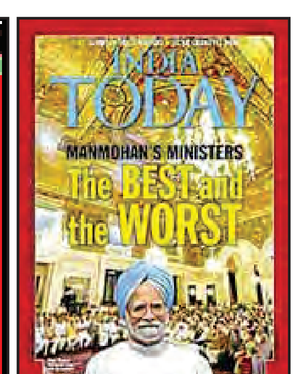

25 अक्तूबर 2004

कांग्रेस नेतृत्व कई बार सुर्खियों में छाया रहा

© NCERT not to be republished

गठबंधन का युग

1989 के चुनावों में कांग्रेस पार्टी की हार हुई थी, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि किसी दूसरी पार्टी को इस चुनाव में बहुमत मिल गया था। कांग्रेस अब भी लोकसभा में सबसे बड़ी पार्टी थी, लेकिन बहुमत में न होने के कारण उसने विपक्ष में बैठने का फ़ैसला किया। राष्ट्रीय मोर्चे को (यह मोर्चा जनता दल और कुछ अन्य क्षेत्रीय दलों को मिलाकर बना था) परस्पर विरुद्ध दो राजनीतिक समूहों – भाजपा और वाम मोर्चे – ने समर्थन दिया। इस समर्थन के आधार पर राष्ट्रीय मोर्चा ने एक गठबंधन सरकार बनायी, लेकिन इसमें भाजपा और वाम मोर्चे ने शिरकत नहीं की।

वी.पी. सिंह के नेतृत्व वाली राष्ट्रीय मोर्चा सरकार को वाम मोर्चा (यहाँ प्रतीक रूप में ज्योति बसु) और भाजपा (यहाँ प्रतीक रूप में एल.के. आडवाणी) ने समर्थन दिया था।

साभार: सुधीर तैलंग / एच.टी. बुक ऑफ कार्टून्स

not to be republished

कांग्रेस का पतन

कांग्रेस की हार के साथ भारत की दलीय व्यवस्था से उसका दबदबा खत्म हो गया। अध्याय पाँच में कांग्रेस प्रणाली की पुनर्स्थापना की चर्चा की गई थी। क्या आपको यह चर्चा याद है। 1960 के दशक के अंतिम सालों में कांग्रेस के एकछत्र राज को चुनौती मिली थी, लेकिन इंदिरा गाँधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने भारतीय राजनीति पर अपना प्रभुत्व फिर से कायम किया। नब्बे के दशक में कांग्रेस की अग्रणी हैसियत को एक बार फिर चुनौती मिली। बहरहाल इसका मतलब यह नहीं है कि कांग्रेस की जगह कोई दूसरी पार्टी प्रमुख हो गई।

इस दौर में कांग्रेस के दबदबे के खात्मे के साथ बहुदलीय शासन-प्रणाली का युग शुरू हुआ। यह तो निश्चित ही है कि अपने देश में अनेक पार्टियाँ चुनाव लड़ती आयी हैं। हमारी संसद में हमेशा कई दलों के सांसद रहे हैं। 1989 के बाद एक नयी बात देखने में आयी। अब कई पार्टियाँ इस तरह उभरीं कि किसी एक-दो पार्टी को ही अधिकाँश वोट या सीट नहीं मिल पाते थे। इसका मतलब यह भी हुआ कि 1989 के बाद से लोकसभा के चुनावों में कभी भी किसी एक पार्टी को 2014 तक पूर्ण बहुमत नहीं मिला। इस बदलाव के साथ केंद्र में गठबंधन सरकारों का दौर शुरू हुआ और क्षेत्रीय पार्टियों ने गठबंधन सरकार बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

खोज-बीन

अपने माता-पिता से 1990 के दशक के बाद से हुई घटनाओं के बारे में पूछें और इस समय की उनकी यादों को कुरेदें। उनसे पूछिए कि उस दौर की महत्त्वपूर्ण घटनाओं के बारे में वे क्या सोचते हैं। समूह बनाकर एक साथ बैठिए और अपने माता-पिता द्वारा बतायी गई घटनाओं की एक व्यापक सूची बनाइए। देखिए कि किस घटना का ज़िक्र ज़्यादा आया है। फिर, इस अध्याय में जिन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बदलावों का ज़िक्र आया है उनसे तुलना कीजिए। आप इस बात पर चर्चा कर सकते हैं कि कुछ घटनाएँ क्यों कुछ लोगों के लिए ज़्यादा महत्त्वपूर्ण थीं, जबकि दूसरों के लिए नहीं।

गठबंधन की राजनीति

नब्बे का दशक कुछ ताकतवर पार्टियों और आंदोलनों के उभार का साक्षी रहा। इन पार्टियों और आंदोलनों ने दलित तथा पिछड़े वर्ग (अन्य पिछड़ा वर्ग या ओबीसी) की नुमाइंदगी की। इन दलों में से अनेक ने क्षेत्रीय आकांक्षाओं की भी दमदार दावेदारी की। 1996 में बनी संयुक्त मोर्चे की सरकार में इन पार्टियों ने अहम किरदार निभाया। संयुक्त मोर्चा 1989 के राष्ट्रीय मोर्चे के ही समान था, क्योंकि इसमें भी जनता दल और कई क्षेत्रीय पार्टियाँ शामिल थीं। इस बार भाजपा ने सरकार को समर्थन नहीं दिया। संयुक्त मोर्चा की सरकार को कांग्रेस का समर्थन हासिल था। इससे पता चलता है कि राजनीतिक समीकरण किस कदर छुईमुई थे। 1989 में भाजपा और वाम मोर्चा दोनों ने राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार को समर्थन दिया था, क्योंकि ये दोनों कांग्रेस को सत्ता से बाहर रखना चाहते थे। इस बार वाममोर्चा ने गैर-कांग्रेसी सरकार को अपना समर्थन जारी रखा, लेकिन संयुक्त मोर्चा की सरकार को कांग्रेस पार्टी ने भी समर्थन दिया। दरअसल, कांग्रेस और वाममोर्चा दोनों इस बार भाजपा को सत्ता से बाहर रखना चाहते थे।

बहरहाल इन्हें ज़्यादा दिनों तक सफलता नहीं मिली और भाजपा ने 1991 तथा 1996 के चुनावों में अपनी स्थिति लगातार मज़बूत की। 1996 के चुनावों में यह सबसे बड़ी पार्टी बनकर उभरी। इस नाते भाजपा को सरकार बनाने का न्यौता मिला। लेकिन अधिकांश दल, भाजपा की नीतियों के खिलाफ़ थे और इस वजह से भाजपा की सरकार लोकसभा में बहुमत हासिल नहीं कर सकी। आखिरकार भाजपा एक गठबंधन (राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन-राजग)

© NCERT not to be republished

के अगुआ के रूप में सत्ता में आयी और 1998 के मई से 1999 के जून तक सत्ता में रही। फिर 1999 के अक्तूबर में इस गठबंधन ने दोबारा सत्ता हासिल की। राजग की इन दोनों सरकारों में अटल बिहारी वाजपेयी प्रधानमंत्री बने। 1999 की राजग सरकार ने अपना निर्धारित कार्यकाल पूरा किया।

साभार: अजीत मैनन/इंडिया टुडे

एक पार्टी के प्रभुत्व के दौर से लेकर बहुदलीय गठबंधन प्रणाली तक के सफ़र पर एक कार्टूनिस्ट की नज़र

इस तरह 1989 के चुनावों से भारत में गठबंधन की राजनीति के एक लंबे दौर की शुरुआत हुई। इसके बाद से केंद्र में 11 सरकारें बनीं। ये सभी या तो गठबंधन की सरकारें थीं अथवा दूसरे दलों के समर्थन पर टिकी अल्पमत की सरकारें थीं जो इन सरकारों में शामिल नहीं हुए। इस नए दौर में कोई सरकार क्षेत्रीय पार्टियों की साझेदारी अथवा उनके समर्थन से ही बनायी जा सकती थी। यह बात 1989 के राष्ट्रीय मोर्चा सरकार, 1996 और 1997 की संयुक्त मोर्चा सरकार, 1998 और 1999 की राजग, 2004 और 2009 की संप्रग सरकार पर समान रूप से लागू होती है। हालांकि, 2014 में यह प्रवृत्ति बदल गयी है।

आइए, अब तक जो हमने सीखा उसे इस बदलाव के साथ जोड़कर देखने की कोशिश करें। माना जा सकता है कि गठबंधन सरकारों का युग लंबे समय से जारी कुछ प्रवृत्तियों की परिणति है। पिछले कुछ दशकों से भारतीय समाज में गुपचुप बदलाव आ रहे थे और इन बदलावों ने जिन प्रवृत्तियों को जन्म दिया, वे भारतीय राजनीति को गठबंधन की सरकारों के युग की तरफ़ ले आयीं।

© NCERT not to be republished

केंद्रीय सरकार 1989 के बाद

अवधि	गठबंधन/सरकार में शामिल दल	प्रधानमंत्री
दिसंबर 1989 – नवंबर 1990	**राष्ट्रीय मोर्चा**, वाम मोर्चा और भाजपा का समर्थन	वी.पी. सिंह
नवंबर 1990 – जून 1991	**राष्ट्रीय मोर्चा** का एक तबका समाजवादी जनता पार्टी के नेतृत्व में; कांग्रेस का समर्थन	चंद्र शेखर
जून 1991 – मई 1996	**कांग्रेसः** एआईडीएमके तथा कुछ अन्य दलों का समर्थन	पी. वी. नरसिम्हा राव
मई 1996 – जून 1996	**भाजपाः** अल्पमत सरकार	अटल बिहारी वाजपेयी
जून 1996 – अप्रैल 1997	कांग्रेस के समर्थन पर **संयुक्त मोर्चा** की सरकार	एच.डी. देवगौड़ा
अप्रैल 1997 – मार्च 1998	कांग्रेस के समर्थन पर **संयुक्त मोर्चा** की सरकार	इंद्रकुमार गुजराल
मार्च 1998 – अक्टूबर 1999; अक्टूबर 1999 – मई 2004	भाजपा-नीत **राजग गठबंधन**	अटल बिहारी वाजपेयी
मई 2004 – मई 2014	कांग्रेस-नीत **संप्रग** गठबंधन	मनमोहन सिंह
मई 2014 के बाद	भाजपा-नीत **राजग गठबंधन**	नरेंद्र मोदी

वी.पी. सिंह

चंद्र शेखर

पी. वी. नरसिम्हा राव

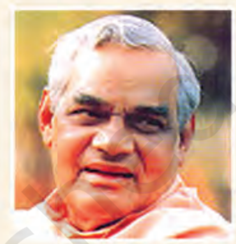
अटल बिहारी वाजपेयी

एच.डी. देवगौड़ा

इंद्रकुमार गुजराल

अटल बिहारी वाजपेयी

मनमोहन सिंह

नरेंद्र मोदी

वर्तमान और पूर्व प्रधान मंत्रियों के बारे में अधिक जानकारी के लिए, देखें http://pmindia.gov.in/hi

नोटः यहाँ कुछ खाली स्थान छोड़ दिए गए हैं। इनमें आप किसी सरकार की मुख्य नीतियों, कामकाज और उन पर उठे विवाद की कुछ सूचनाएँ लिख सकते हैं।

© NCERT not to be republished

दूसरे अध्याय में हमने पढ़ा था कि शुरुआती सालों में कांग्रेस खुद में ही एक गठबंधननुमा पार्टी थी। इसमें विभिन्न हित, सामाजिक समूह और वर्ग एक साथ रहते थे। इस परिघटना को 'कांग्रेस प्रणाली' कहा गया।

पाँचवें अध्याय में हम यह बात पढ़ चुके हैं कि 1960 के दशक से विभिन्न समूह कांग्रेस पार्टी से अलग होने लगे और इन्होंने अपनी खुद की पार्टी बनायी। हम इस बात पर भी गौर कर चुके हैं कि 1977 के बाद के सालों में कई क्षेत्रीय दलों का उदय हुआ। इन सारे कारणों से कांग्रेस पार्टी कमज़ोर हुई, लेकिन कोई दूसरी पार्टी इस तरह से नहीं उभर पायी कि कांग्रेस का विकल्प बन सके।

अन्य पिछड़ा वर्ग का राजनीतिक उदय

इस अवधि का एक दूरगामी बदलाव था–अन्य पिछड़ा वर्ग का उदय। आप 'ओबीसी' शब्द से परिचित होंगे। इससे विचार-विवेचन की एक प्रशासनिक कोटि 'अन्य पिछड़ा वर्ग' अथवा 'अदर बैकवर्ड क्लासेज्' का संकेत किया जाता है। यह अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जनजाति से अलग एक कोटि है, जिसमें शैक्षणिक और सामाजिक रूप से पिछड़े समुदायों की गणना की जाती है। इन समुदायों को 'पिछड़ा वर्ग' भी कहा जाता है। छठे अध्याय में हम यह देख चुके हैं कि पिछड़ी जातियों के अनेक तबके कांग्रेस से दूर जा रहे थे। उनमें कांग्रेस के लिए समर्थन कम होता जा रहा था। ऐसे में गैर-कांग्रेसी दलों के लिए एक जगह पैदा हुई और इन दलों ने इस तबके का समर्थन हासिल किया। आपको याद होगा कि गैर-कांग्रेसी दलों के राजनीतिक अभ्युदय की अभिव्यक्ति 1977 की जनता पार्टी की सरकार के रूप में हुई। जनता पार्टी के कई घटक मसलन भारतीय क्रांतिदल और संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी का ग्रामीण इलाकों के अन्य पिछड़े वर्ग में ताकतवर जनाधार था।

'मंडल' का लागू होना

1980 के दशक में अन्य पिछड़ा वर्गों के बीच लोकप्रिय ऐसे ही राजनीतिक समूहों को जनता दल ने एकजुट किया। राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार ने मंडल आयोग की सिफ़ारिशों को लागू करने का फ़ैसला किया। इससे अन्य पिछड़ा वर्ग की राजनीति को सुगठित रूप देने में मदद मिली। नौकरी में आरक्षण के सवाल पर तीखे वाद-विवाद हुए और इन विवादों से 'अन्य पिछड़ा वर्ग' अपनी पहचान को लेकर ज़्यादा सजग हुआ। जो इस तबके को लामबंद करना चाहते थे, उन्हें इसका फायदा हुआ। इस दौर में ऐसी अनेक पार्टियाँ आगे आयीं, जिन्होंने रोज़गार और शिक्षा के क्षेत्र में अन्य पिछड़ा वर्ग को बेहतर अवसर उपलब्ध कराने की माँग की। इन दलों ने सत्ता में 'अन्य पिछड़ा वर्ग' की हिस्सेदारी का सवाल भी उठाया। इन दलों का कहना था कि भारतीय समाज में अन्य पिछड़ा वर्ग का एक बड़ा हिस्सा है। इसे देखते हुए अन्य पिछड़ा वर्ग का शासन में समुचित प्रतिनिधित्व और सत्ता में समुचित मौजूदगी तय करना लोकतांत्रिक कदम होगा।

मंडल आयोग की रिपोर्ट को लागू करने पर राजनीतिक माहौल सरगर्म हो उठा। जगह-जगह विरोध प्रदर्शन हुए।

मंडल अयोग

दक्षिण के राज्यों में अगर बहुत पहले से नहीं तो भी कम-से-कम 1960 के दशक से अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण का प्रावधान चला आ रहा था। बहरहाल, यह नीति उत्तर भारत के राज्यों में लागू नहीं थी। 1977-79 की जनता पार्टी की सरकार के समय उत्तर भारत में पिछड़े वर्ग के आरक्षण के लिए राष्ट्रीय स्तर पर मज़बूती से आवाज़ उठाई गई। बिहार के तत्कालीन मुख्यमंत्री कर्पूरी ठाकुर इस दिशा में अग्रणी थे। उनकी सरकार ने बिहार में 'ओबीसी' को आरक्षण देने के लिए एक नयी नीति लागू की। इसके बाद केंद्र सरकार ने 1978 में एक आयोग बैठाया। इसके जिम्मे पिछड़ा वर्ग की स्थिति को सुधारने के उपाय बताने का काम सौंपा गया। आज़ादी के बाद से यह दूसरा अवसर था, जब सरकार ने ऐसा आयोग नियुक्त किया। इसी कारण आधिकारिक रूप से इस आयोग को 'दूसरा पिछड़ा वर्ग आयोग' कहा गया। आमतौर पर इस आयोग को इसके अध्यक्ष बिन्देश्वरी प्रसाद मंडल के नाम पर 'मंडल कमीशन' कहा जाता है।

बी.पी. मंडल (1918-1982): 1967-1970 तथा 1977-1979 में बिहार से सांसद चुने गए। दूसरा पिछड़ा वर्ग आयोग की अध्यक्षता की। इस आयोग ने अन्य पिछड़ा वर्ग को आरक्षण देने की सिफ़ारिश की। बिहार के समाजवादी नेता। 1968 में डेढ़ माह तक बिहार के मुख्यमंत्री पद पर रहे। 1977 में जनता पार्टी में शामिल हुए।

मंडल आयोग का गठन भारतीय समाज के विभिन्न तबकों के बीच शैक्षिक और सामाजिक पिछड़ेपन की व्यापकता का पता लगाने और इन पिछड़े वर्गों की पहचान के तरीके बताने के लिए किया गया था। आयोग से यह भी अपेक्षा की गई थी कि वह इन वर्गों के पिछड़ेपन को दूर करने के उपाय सुझाएगा। आयोग ने 1980 में अपनी सिफारिशें पेश कीं। इस वक्त तक जनता पार्टी की सरकार गिर चुकी थी। आयोग का मशविरा था कि पिछड़ा वर्ग को पिछड़ी जाति के अर्थ में स्वीकार किया जाए, क्योंकि अनुसूचित जातियों से इतर ऐसी अनेक जातियाँ हैं, जिन्हें वर्ण व्यवस्था में 'नीच' समझा जाता है। आयोग ने एक सर्वेक्षण किया और पाया कि इन पिछड़ी जातियों की शिक्षा संस्थाओं तथा सरकारी नौकरियों में बड़ी कम मौजूदगी है। इस वजह से आयोग ने इन समूहों के लिए शिक्षा संस्थाओं तथा सरकारी नौकरियों में 27 प्रतिशत सीट आरक्षित करने की सिफारिश की। मंडल आयोग ने अन्य पिछड़ा वर्ग की स्थिति सुधारने के लिए कई और समाधान सुझाए जिनमें भूमि-सुधार भी एक था।

1990 के अगस्त में राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार ने मंडल आयोग की सिफ़ारिशों में से एक को लागू करने का फ़ैसला किया। यह सिफ़ारिश केंद्रीय सरकार और उसके उपक्रमों की नौकरियों में अन्य पिछड़ा वर्ग को आरक्षण देने के संबंध में थी। सरकार के फ़ैसले से उत्तर भारत के कई शहरों में हिंसक विरोध का स्वर उमड़ा। इस फ़ैसले को सर्वोच्च न्यायालय में भी चुनौती दी गई और यह प्रकरण 'इंदिरा साहनी केस' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सरकार के फ़ैसले के खिलाफ़ अदालत में जिन लोगों ने अर्जी दायर की थी, उनमें एक नाम इंदिरा साहनी का भी था। 1992 के नवंबर में सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार के निर्णय को सही ठहराते हुए अपना फ़ैसला सुनाया। राजनीतिक दलों में इस फ़ैसले के क्रियान्वयन के तरीके को लेकर कुछ मतभेद था। बहरहाल अन्य पिछड़ा वर्ग को आरक्षण देने के मसले पर देश के सभी बड़े राजनीतिक दलों में सहमति थी।

© NCERT not to be republished

राजनीतिक परिणाम

1980 के दशक में दलित जातियों के राजनीतिक संगठनों का भी उभार हुआ। 1978 में 'बामसेफ' (बैकवर्ड एंड माइनॉरिटी कम्युनिटीज़ एम्पलाइज़ फेडरेशन) का गठन हुआ। यह सरकारी कर्मचारियों का कोई साधारण-सा ट्रेड यूनियन नहीं था। इस संगठन ने 'बहुजन' यानी अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग और अल्पसंख्यकों की राजनीतिक सत्ता की ज़बरदस्त तरफ़दारी की। इसी का परवर्ती विकास 'दलित-शोषित समाज संघर्ष समिति' है, जिससे बाद के समय में बहुजन समाज पार्टी का उदय हुआ। इस पार्टी की अगुआई कांशीराम ने की। बहुजन समाज पार्टी (बसपा) अपने शुरुआती दौर में एक छोटी पार्टी थी और इसे पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश के दलित मतदाताओं का समर्थन हासिल था, लेकिन 1989 और 1991 के चुनावों में इस पार्टी को उत्तर प्रदेश में सफलता मिली। आज़ाद भारत में यह पहला मौका था, जब कोई राजनीतिक दल मुख्यतया दलित मतदाताओं के समर्थन के बूते ऐसी राजनीतिक सफलता हासिल कर पाया था।

दरअसल कांशीराम के नेतृत्व में बसपा ने अपने संगठन की बुनियाद व्यवहार केंद्रित नीतियों पर रखी थी। बहुजन (यानी अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग और धार्मिक अल्पसंख्यक) देश की आबादी में सबसे ज़्यादा हैं और संख्या के लिहाज़ से एक मजबूत राजनीतिक ताकत का रूप ले सकते हैं–बसपा के आत्मविश्वास को इस तथ्य से बड़ा बल मिला था। इसके बाद बसपा राज्य में एक बड़ी राजनीतिक ताकत के रूप में उभरी और उसने एक से ज़्यादा दफे यहाँ सरकार बनायी। इस पार्टी का सबसे ज़्यादा समर्थन दलित मतदाता करते हैं, लेकिन अब इसने समाज के विभिन्न वर्गों के बीच अपना जनाधार बढ़ाना शुरू किया है। भारत के कई हिस्सों में दलित राजनीति और अन्य पिछड़ा वर्ग की राजनीति ने स्वतंत्र रूप धारण किया है और इन दोनों के बीच अकसर प्रतिस्पर्धा भी चलती है।

कांशीराम (1934–2006): बहुजन समाज के सशक्तीकरण के प्रतिपादक और बहुजन समाज पार्टी (बसपा) के संस्थापक; सामाजिक और राजनीतिक कार्य के लिए केंद्र सरकार की नौकरी से इस्तीफ़ा; बामसेफ; डीएस-4 और अंततः 1984 में बसपा की स्थापना; कुशाग्र रणनीतिकार; आप राजनीतिक सत्ता को सामाजिक समानता का आधार मानते थे; उत्तर भारत के राज्यों में दलित राजनीति के संगठनकर्ता

© NCERT not to be republished

सांप्रदायिकता, धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र

इस दौर में आया एक दूरगामी बदलाव धार्मिक पहचान पर आधारित राजनीति का उदय है। इसने धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र के बारे में बहसों को सरगर्म किया। हमने छठे अध्याय में पढ़ा था कि आपातकाल के बाद भारतीय जनसंघ, जनता पार्टी में शामिल हो गया था। जनता पार्टी के पतन और बिखराव के बाद भूतपूर्व जनसंघ के समर्थकों ने 1980 में भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) बनाई। शुरू-शुरू में भाजपा ने जनसंघ की अपेक्षा कहीं ज़्यादा बड़ा राजनीतिक मंच अपनाया। इसने 'गाँधीवादी समाजवाद' को अपनी विचारधारा के रूप में स्वीकार किया। बहरहाल भाजपा को 1980 और 1984 के चुनावों में खास सफलता नहीं मिली। 1986 के बाद इस पार्टी ने अपनी विचारधारा में हिंदू राष्ट्रवाद के तत्त्वों पर ज़ोर देना शुरू किया। भाजपा ने 'हिंदुत्व' की राजनीति का रास्ता चुना और हिंदुओं को लामबंद करने की रणनीति अपनायी।

'हिंदुत्व' अथवा 'हिंदूपन' शब्द को वी.डी. सावरकर ने गढ़ा था और इसको परिभाषित करते हुए उन्होंने इसे भारतीय (और उनके शब्दों में हिंदू) राष्ट्र की बुनियाद बताया। उनके कहने का आशय यह था कि भारत राष्ट्र का नागरिक वही हो सकता है, जो भारतभूमि को न सिर्फ़ 'पितृभूमि' बल्कि अपनी 'पुण्यभूमि' भी स्वीकार करे। हिंदुत्व के समर्थकों का तर्क है कि मज़बूत राष्ट्र सिर्फ़ एकीकृत राष्ट्रीय संस्कृति की बुनियाद पर ही बनाया जा सकता है। वे यह भी मानते हैं कि भारत के संदर्भ में राष्ट्रीयता की बुनियाद केवल हिंदू संस्कृति ही हो सकती है।

1986 में ऐसी दो बातें हुईं, जो एक हिंदूवादी पार्टी के रूप में भाजपा की राजनीति के लिहाज़ से प्रधान हो गईं। इसमें पहली बात 1985 के शाहबानो मामले से जुड़ी है। यह मामला एक 62 वर्षीया तलाकशुदा मुस्लिम महिला शाहबानो का था। उसने अपने भूतपूर्व पति से गुजारा भत्ता हासिल करने के लिए अदालत में अर्ज़ी दायर की थी। सर्वोच्च अदालत ने शाहबानो के पक्ष में फ़ैसला सुनाया। पुरातनपंथी मुसलमानों ने अदालत के इस फ़ैसले को अपने 'पर्सनल लॉ' में हस्तक्षेप माना। कुछ मुस्लिम नेताओं की माँग पर सरकार ने मुस्लिम महिला अधिनियम (1986) (तलाक से जुड़े अधिकारों) पास किया। इस अधिनियम के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के फ़ैसले को निरस्त कर दिया गया। सरकार के इस कदम का कई महिला संगठनों, मुस्लिम महिलाओं की जमात तथा अधिकांश बुद्धिजीवियों ने विरोध किया। भाजपा ने कांग्रेस सरकार के इस कदम की आलोचना की और इसे अल्पसंख्यक समुदाय को दी गई अनावश्यक रियायत तथा 'तुष्टिकरण' करार दिया।

अयोध्या विवाद

दूसरी बात का संबंध फैज़ाबाद ज़िला न्यायालय द्वारा फरवरी 1986 में सुनाए गए फ़ैसले से है। इस अदालत ने फ़ैसला सुनाया था कि बाबरी मस्ज़िद के अहाते का ताला खोल दिया जाना चाहिए, ताकि हिंदू यहाँ पूजा पाठ कर सकें, क्योंकि वे इस जगह को पवित्र मानते हैं। अयोध्या स्थित बाबरी मस्जिद को लेकर दशकों से विवाद चला आ रहा था। बाबरी मस्ज़िद का निर्माण अयोध्या में मीर बाकी ने करवाया था। यह मस्ज़िद 16वीं सदी में बनी थी। मीर बाकी मुगल शासक बाबर का सिपहसलार था। कुछ हिंदू मानते हैं कि भगवान राम की जन्मभूमि पर बने हुए एक राम मंदिर को तोड़कर उसी जगह पर यह मस्जिद बनवाई गई थी। इस विवाद

© NCERT not to be republished

ने अदालती मुकदमे का रूप ले लिया और मुकदमा कई दशकों तक जारी रहा। 1940 के दशक के आखिरी सालों में मस्जिद में ताला लगा दिया गया, क्योंकि मामला अदालत के हवाले था।

जैसे ही बाबरी मस्ज़िद के अहाते का ताला खुला, वैसे ही दोनों पक्षों में लामबंदी होने लगी। अनेक हिंदू और मुस्लिम संगठन इस मसले पर अपने-अपने समुदाय को लामबंद करने की कोशिश में जुट गए। भाजपा ने इसे अपना बहुत बड़ा चुनावी और राजनीतिक मुद्दा बनाया। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और विश्व हिंदू परिषद् जैसे कुछ संगठनों के साथ भाजपा ने लगातार प्रतीकात्मक और लामबंदी के कार्यक्रम चलाए। उसने जनसमर्थन जुटाने के लिए गुजरात स्थित सोमनाथ से उत्तर प्रदेश स्थित अयोध्या तक एक बड़ी 'रथयात्रा' निकाली।

विध्वंस और उसके बाद

जो संगठन राम मंदिर के निर्माण का समर्थन कर रहे थे, उन्होंने 1992 के दिसंबर में एक 'कारसेवा' का आयोजन किया। इसके अंतर्गत 'रामभक्तों' से आह्वान किया गया कि वे 'राम मंदिर' के निर्माण में श्रमदान करें। पूरे देश में माहौल तनावपूर्ण हो गया। अयोध्या में यह तनाव अपने चरम पर था। सर्वोच्च न्यायालय ने राज्य सरकार को आदेश दिया कि वह 'विवादित स्थल' की सुरक्षा का पूरा इंतज़ाम करे। बहरहाल 6 दिसंबर 1992 को देश के विभिन्न भागों से लोग आ जुटे और इन लोगों ने मस्जिद को गिरा दिया। मस्ज़िद के विध्वंस की खबर से देश के कई भागों में हिंदू और मुसलमानों के बीच झड़प हुई। 1993 के जनवरी में एक बार फिर मुंबई में हिंसा भड़की और अगले दो हफ़्तों तक जारी रही।

THE HINDUSTAN TIMES
New Delhi Monday December 7 1992
Babri Masjid demolished, Centre sacks Kalyan Govt

नईदुनिया
बाबरी मस्जिद पूर्णतः ध्वस्त
मुख्यमंत्री बर्खास्त, उ.प्र. विधानसभा भंग, राष्ट्रपति शासन लागू

© NCERT not to be republished

Ayodhya BJP's worst miscalculation: Vajpayee

Had warned Advani, but no place for moderates, lam

Demolition no cause for remorse: Advani

Special Correspondent
New Delhi

BHARATIYA Janata Party leader L K Advani's self-confessed "depression" and "sadness" following the December 6 "incident" in Ayodhya appears to ... completely.

... doned, dilapidated structure as a mosque." According to him, the description of such a structure as a mosque was an example of the distortion of secularism.

According to Mr Advani, the pulling down of the structure was particularly unfortunate and the BJP was taken aback by it since it was not part of its scheme of things. "We are sorry for the incident since demolition was not on our agenda," Mr Advani clarified. He went on to add that he did

Violent reaction world over

DEC 7. — Muslims angry at the demolition of the Babari Masjid today attacked temples in Pakistan, Bangladesh, and England, set fire to an Indian Airlines office and damaged the Indian High Commission in Dhaka as the 50-member Organization of Islamic Countries condemned the Ayodhya incident as "shameful", reports PTI.

Six temples in Pakistan and ...

office and attacked the Indian High Commission, its library, temples and shops and commercial establishments owned by the Hindus.

PTI's Sujit Chatterjee said from Islamabad that Government offices and business establishments would remain closed tomorrow.

A PTI report from Islamabad said, a special meeting of the ...

Federal Cabinet, chaired by the Prime Minister, Mr Nawaz Sharif, this morning expressed "deep anguish and grave concern" over the Ayodhya incidents and hoped that "the Government and the people of India will realize the grave implications of the unprecedented fanaticism".

Radio Pakistan said Pakistan would appeal to the UN and the OIC to exert their influence ...

साभारः द पायनियर एवं द स्टेटसमैन

अयोध्या की घटना से कई बदलाव आए। उत्तर प्रदेश में सत्तासीन भाजपा की राज्य सरकार को केंद्र ने बर्खास्त कर दिया। इसके साथ ही दूसरे राज्यों में भी, जहाँ भाजपा की सरकार थी, राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया। चूँकि उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री ने इस बात का हलफ़नामा दिया था कि 'विवादित ढाँचे' की रक्षा की जाएगी। इसलिए सर्वोच्च न्यायालय में उनके खिलाफ़ अदालत की अवमानना का मुकदमा दायर हुआ। भाजपा ने आधिकारिक तौर पर अयोध्या की घटना पर अफ़सोस जताया। केंद्र सरकार ने एक जाँच आयोग नियुक्त किया और उसे उन स्थितियों की जाँच करने के लिए कहा, जिनकी परिणति मस्ज़िद के विध्वंस के रूप में हुई थी। अधिकतर राजनीतिक दलों ने मस्ज़िद के विध्वंस की निंदा की और इसे धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांतों के विरुद्ध बताया। ऐसे में धर्मनिरपेक्षता पर गंभीर बहस चल पड़ी और हमारे सामने कुछ-कुछ वैसे ही सवाल आन खड़े हुए जैसे देश के बँटवारे के तुरंत बाद उभरे थे। बँटवारे के समय देश के सामने सवाल था: क्या भारत एक ऐसा देश बनने जा रहा है, जहाँ बहुसंख्यक धार्मिक समुदाय का अल्पसंख्यकों पर दबदबा कायम होगा या व्यक्ति चाहे किसी भी धर्म का हो भारत में उसे समान रूप से कानून की सुरक्षा तथा बराबरी के नागरिक अधिकार दिए जाएँगे? बाबरी मस्ज़िद के ध्वंस के बाद भी देश में यही सवाल एक बार फिर-से मुखर हो उठे।

इन कार्यवाहियों से उन विनाशकारी घटनाओं की अनुगूँज सुनाई देती है, जिनकी परिणति 6 दिसंबर 1992 के दिन अयोध्या स्थित रामजन्म भूमि–बाबरी मस्जिद के विवादित ढाँचे के ध्वंस में हुई थी। हज़ारों निर्दोष नागरिकों ने जान गँवायी, धन–संपत्ति का भारी नुकसान हुआ और इससे भी भारी क्षति तो यह हुई कि इस महान भूमि की छवि को अंतर्राष्ट्रीय फ़लक पर धक्का पहुँचा कि यहाँ विभिन्न समुदायों के बीच सहिष्णुता, विश्वास और भाईचारे की महान परंपरा का पालन–संरक्षण किया जाता रहा है।

यह दुख की बात है कि एक राजनीतिक दल के नेता और मुख्यमंत्री को अदालत की अवमानना के अभियोग का सामना करना पड़ रहा है, लेकिन ऐसा कानून की महिमा को बनाए रखने के लिए किया गया है। हम उसे अदालत की अवमानना का दोषी करार देते हैं। चूँकि इस 'अवमानना' से ऐसे बड़े मुद्दे जुड़े हैं, जिनका असर हमारे राष्ट्र के धर्मनिरपेक्ष ताने–बाने की बुनियाद पर पड़ता है, इसलिए हम उसे एक दिन के प्रतीकात्मक कारावास का दंड भी देते हैं।

मुख्य न्यायाधीश वेंकटचेलैया और न्यायमूर्ति जी.एन. रे (सर्वोच्च न्यायालय)

उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री ने राष्ट्रीय एकता परिषद् के सामने वायदा किया था कि 'रामजन्म भूमि–बाबरी मस्ज़िद' ढाँचे की रक्षा की जाएगी। इस वायदा खिलाफ़ी से जुड़े एक मुक़दमे में सर्वोच्च न्यायालय का फ़ैसला।
मो. असलम बनाम भारत संघ, 28 अक्तूबर 1994

© NCERT not to be republished

इसी अवधि में चुनावी उद्देश्य के लिए धार्मिक भावनाओं के इस्तेमाल पर भी बहस छिड़ी। भारत की लोकतांत्रिक राजनीति इस वायदे पर आधारित है कि सभी धार्मिक समुदाय किसी भी पार्टी में शामिल होने के लिए स्वतंत्र हैं, लेकिन कोई भी राजनीतिक दल धार्मिक समुदाय पर आधारित दल नहीं होगा। सांप्रदायिक सौहार्द के इस लोकतांत्रिक माहौल को 1984 के बाद से कई दफा चुनौतियों का सामना करना पड़ा है। हम आठवें अध्याय में पढ़ चुके हैं कि ऐसा 1984 के सिख–विरोधी दंगों में हुआ। ठीक इसी तरह 2002 के फरवरी–मार्च में गुजरात के मुसलमानों के विरुद्ध हिंसा भड़की। अल्पसंख्यक समुदाय के खिलाफ़ ऐसी हिंसा और दो समुदायों के बीच हिंसक टकराव लोकतंत्र के ऊपर खतरा है।

गुजरात के मुस्लिम विरोधी दंगे

2002 के फरवरी–मार्च में गुजरात के मुसलमानों के खिलाफ़ बड़े पैमाने पर हिंसा हुई। गोधरा स्टेशन पर घटी एक घटना इस हिंसा का तात्कालिक उकसावा साबित हुई। अयोध्या की ओर से आ रही एक ट्रेन की बोगी कारसेवकों से भरी हुई थी और इसमें आग लग गई। सत्तावन व्यक्ति इस आग में मर गए। यह संदेह करके कि बोगी में आग मुसलमानों ने लगायी होगी। अगले दिन गुजरात के कई

GUJARAT IS BURNING

Former MP's family among 70 dead

HT Correspondent
Ahmedabad, February 28

MORE THAN 70 people were killed and several injured as Gujarat reported incidents of stabbing, rioting, arson, looting and police firing on Thursday, a day after four bogies of the Sabarmati Express carrying kar sewaks from Ayodhya were set on fire in Godhra killing 58 people.

The Cabinet Committee on Security put the Army on stand-by in the riot-hit areas.

Over 26 towns statewide have been put under indefinite curfew. Vishwa Hindu Parishad (VHP) activists who had called a statewide bandh on Thursday to protest the killing of the kar sewaks, attacked several Muslim-populated areas of the state and set fire to Muslim-owned properties.

Over 50 of those killed were in Ahmedabad. And 19 of them were relatives of former Congress MP Ehsan Jaffrey, who himself was killed. They died when the building they lived in was set on fire in Meghaninagar. In an earlier incident, 17 Muslim slum-dwellers were also burned alive.

The Wakf Board offices in Gandhinagar were burned down and the Centre for

BACKLASH: A truck on fire in Ahmedabad.

ple of mosques being attacked by VHP activists. Six buses and a truck were also set on fire.

Police arrested 700 people — 80 in Godhra, including two councillors — in connection with Wednesday's attack.

Two persons died and at least six were injured when police opened fire to disperse a rampaging mob in Ahmedabad on Thursday afternoon. Gujarat Chief Minister Narendra Modi has ordered a judicial inquiry of the attack. He said those responsible for the attack on the

27 फरवरी, 1947 को संविधान सभा से संबंधित मौलिक अधिकार, अल्पसंख्यक तथा आदिवासी एवं अन्य मामलों की सलाहकार समिति की पहली ही बैठक में पटेल ने ज़ोर देकर कहा था:

"यह हमारे ऊपर है कि हम इसे एक खोखला दावा, एक झूठा दावा साबित करें और जता दें कि अपने अल्पसंख्यकों की रक्षा की चिंता हमसे ज़्यादा कोई नहीं कर सकता है। हमारा ध्येय उनमें से हर एक को संतुष्ट करना है। आइए, हम साबित करें कि हम अपने ऊपर शासन कर सकते हैं और किसी दूसरे पर शासन करने की हमारी महत्त्वाकांक्षा नहीं है।"

गुजरात की घटनाओं से देश मर्माहत है। इन घटनाओं की शुरुआत गोधरा-कांड से हुई और फिर लगातार दो महीने से भी ज़्यादा हिंसा का तांडव मचा, जिससे पूरा राज्य दहल उठा। इसमें कोई शक नहीं है कि आयोग की राय में राज्य सरकार लोगों के जीवन, स्वतंत्रता, समता और गरिमा के हनन को रोकने में बुरी तरह नाकाम रही। घावों को भरना और शांति-सौहार्द से भरे भविष्य की राह तलाशना ज़रूरी है, लेकिन इन उच्च आदर्शों को पाने की कोशिश न्याय तथा देश के संविधान के मूल्यों और कानून की बुनियाद पर की जानी चाहिए।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग
वार्षिक रिपोर्ट 2001-2002

भागों में मुसलमानों के खिलाफ़ बड़े पैमाने पर हिंसा हुई। हिंसा का यह तांडव लगभग एक महीने तक जारी रहा। लगभग 1100 व्यक्ति, जिनमें ज़्यादातर मुसलमान थे, इस हिंसा में मारे गए। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने हिंसा को रोकने, भुक्तभोगियों को राहत देने तथा हिंसा करने वालों पर कानूनी कार्रवाई करने में असफल रहने के आरोप लगाते हुए गुजरात सरकार की आलोचना की। भारत के चुनाव आयोग ने गुजरात विधानसभा के चुनावों को रोकने का फ़ैसला किया। 1984 के सिख-विरोधी दंगों के समान गुजरात के दंगों से भी यह ज़ाहिर हुआ कि सरकारी मशीनरी सांप्रदायिक भावनाओं के आवेग में आ सकती है। गुजरात में घटी ये घटनाएँ हमें आगाह करती हैं कि राजनीतिक उद्देश्यों के लिए धार्मिक भावनाओं को भड़काना ख़तरनाक हो सकता है। इससे हमारी लोकतांत्रिक राजनीति को ख़तरा पैदा हो सकता है।

"मुख्यमंत्री (गुजरात के) को मेरा संदेश है कि वे राजधर्म का पालन करें। शासक को अपनी प्रजा के बीच जाति, मत या धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं करना चाहिए।"

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी

4 अप्रैल, 2002

एक नयी सहमति का उदय

1989 के बाद की अवधि को कभी-कभार कांग्रेस के पतन और भाजपा के अभ्युदय की भी अवधि कहा जाता है। यदि आप इस दौर की राजनीति के जटिल चरित्र को समझना चाहते हैं, तो आपको कांग्रेस और भाजपा की चुनावी हार-जीत की तुलना करनी पड़ेगी।

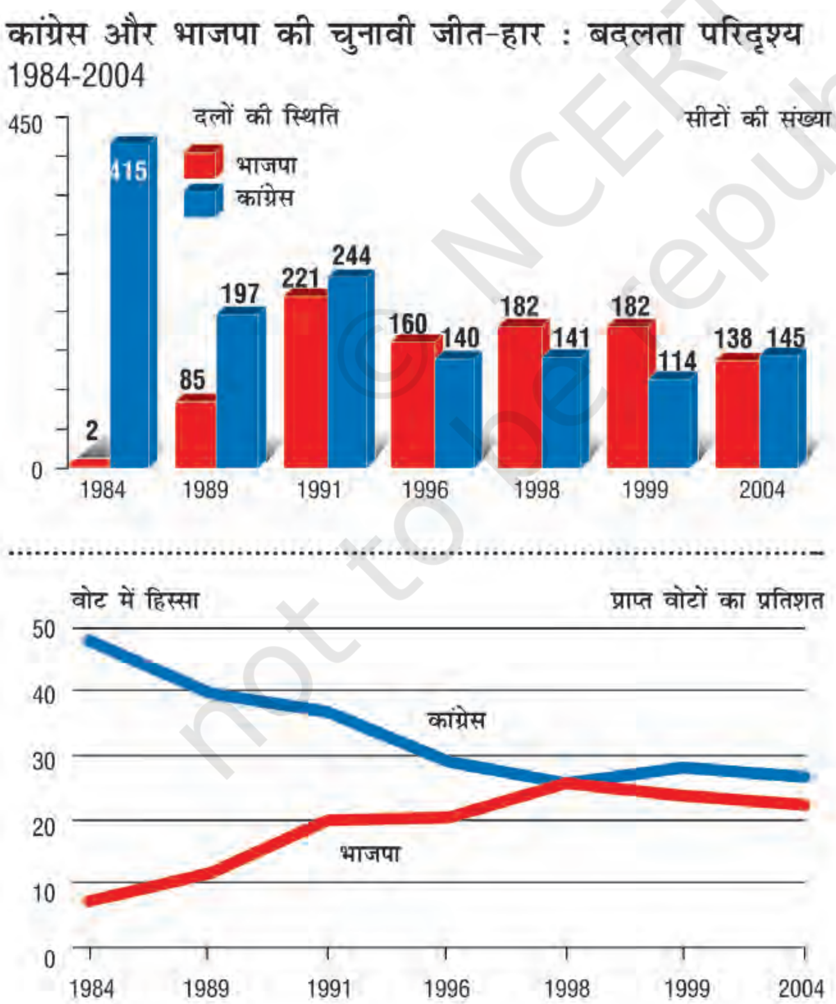

आइए, ऊपर दी गई तालिका की सूचनाओं के अर्थ खोजने की कोशिश करें।

© NCERT not to be republished

- गौर कीजिए कि इस अवधि में भाजपा और कांग्रेस कठिन प्रतिस्पर्धा में लगे हुए थे। 1984 के चुनावों से तुलना करने पर आप इन पार्टियों की चुनावी सफलता में क्या अंतर पाते हैं?
- आप देखेंगे कि कांग्रेस और भाजपा दोनों को मिले वोटों को जोड़ दें, तब भी 1989 के बाद से उन्हें इतने वोट नहीं मिले कि वे कुल मतों के 50 फीसदी से ज़्यादा हों। ठीक इसी तरह इन दोनों दलों को जितनी सीटें मिलीं, उन्हें जोड़ें। आप देखेंगे कि ये सीटें लोकसभा की कुल सीटों के 50 फीसदी से अधिक नहीं है। तो बाकी वोट और सीट कहाँ गए?
- आइए, दूसरे अध्याय की बातों को याद करें। आपने इस अध्याय में दो-पार्टी तंत्रों के बारे में पढ़ा था। आइए, इस किताब के आख़िरी पन्नों पर नज़र डालते हैं। यहाँ कांग्रेस और जनता पार्टी-तंत्र के आरेख पर ग़ौर कीजिए। मौजूदा दलों में ऐसे कौन-कौन-से दल हैं, जो न तो दलों के कांग्रेस परिवार में थे और न ही जनता पार्टी परिवार में? नब्बे के दशक में राजनीतिक मुकाबला भाजपा-नीत गठबंधन और कांग्रेस-नीत गठबंधन के बीच चला। क्या आप ऐसी पार्टियों की सूची बना सकते हैं, जो दोनों में से किसी गठबंधन में शामिल नहीं हैं?

2004 के लोकसभा चुनाव

2004 के चुनावों में कांग्रेस भी पूरे ज़ोर के साथ गठबंधन में शामिल हुई। राजग की हार हुई और संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (संप्रग) की सरकार बनी। इस गठबंधन का नेतृत्व कांग्रेस ने किया। संप्रग को वाम मोर्चा ने समर्थन दिया। 2004 के चुनावों में एक हद तक कांग्रेस का पुनरुत्थान भी हुआ। 1991 के बाद इस दफा पार्टी की सीटों की संख्या एक बार फिर बढ़ी। बहरहाल, 2004 के चुनावों में राजग और संप्रग को मिले कुल वोटों का अंतर बड़ा कम था। इस तरह दलीय प्रणाली सत्तर के दशक की तुलना में एकदम ही बदल गई है।

1990 के दशक के बाद से हमारे सामने जो राजनीतिक प्रक्रिया आकार ले रही है, उसमें हम मुख्य रूप से चार तरह की पार्टियों के उभार को पढ़ सकते हैं : कांग्रेस के साथ गठबंधन में शामिल दल; भाजपा के साथ गठबंधन में शामिल दल; वाम मोर्चा के दल और कुछ ऐसे दल जो इन तीनों में से किसी में शामिल नहीं हैं। इस स्थिति से संकेत मिलते हैं कि राजनीतिक मुकाबला बहुकोणीय होगा। इन स्थितियों का एक तकाजा राजनीतिक विचारधाराओं में हेर-फेर भी है।

> इस अध्याय में 2004 के चुनाव (14वीं लोकसभा) तक भारतीय राजनीति की प्रमुख घटनाओं को शामिल किया गया है।
>
> इसके बाद लोकसभा चुनाव 2009 में आयोजित किए गए, जिसके दौरान कांग्रेस के नेतृत्व में संप्रग की जीत हुई। 2014 के चुनाव में भाजपा के नेतृत्व वाली राजग विजेता बन कर उभरी।
>
> भारत निर्वाचन आयोग की वेबसाइट (http://eci.nic.in) से परिणामों के बारे में आँकड़े एकत्र करके 2009 के चुनाव (15वीं लोकसभा) और 2014 के चुनाव (16वीं लोकसभा) में विभिन्न राजनीतिक दलों के चुनावी प्रदर्शन का तुलना करें।
>
> 16वीं लोकसभा के सदस्यों का एक विस्तृत अध्ययन लोकसभा की वेबसाइट (http://loksabha.nic.in) पर उपलब्ध है।
>
> 2004 के बाद से भारत में प्रमुख राजनीतिक घटनाओं का एक घटनाक्रम तैयार करें और अपनी कक्षा में उस पर चर्चा करें।

बढ़ती सहमति

बहरहाल, अनेक महत्त्वपूर्ण मसलों पर अधिकतर दलों के बीच एक व्यापक सहमति है। कड़े मुकाबले और बहुत-से संघर्षों के बावजूद अधिकतर दलों के बीच एक सहमति उभरती सी जान पड़ रही है। इस सहमति में चार बातें हैं।

पहला, नयी आर्थिक नीति पर सहमति : कई समूह नयी आर्थिक नीति के खिलाफ़ हैं, लेकिन ज़्यादातर राजनीतिक दल इन नीतियों के पक्ष में हैं। अधिकतर दलों का मानना है कि नई आर्थिक नीतियों से देश समृद्ध होगा और भारत, विश्व की एक आर्थिक शक्ति बनेगा।

© NCERT not to be republished

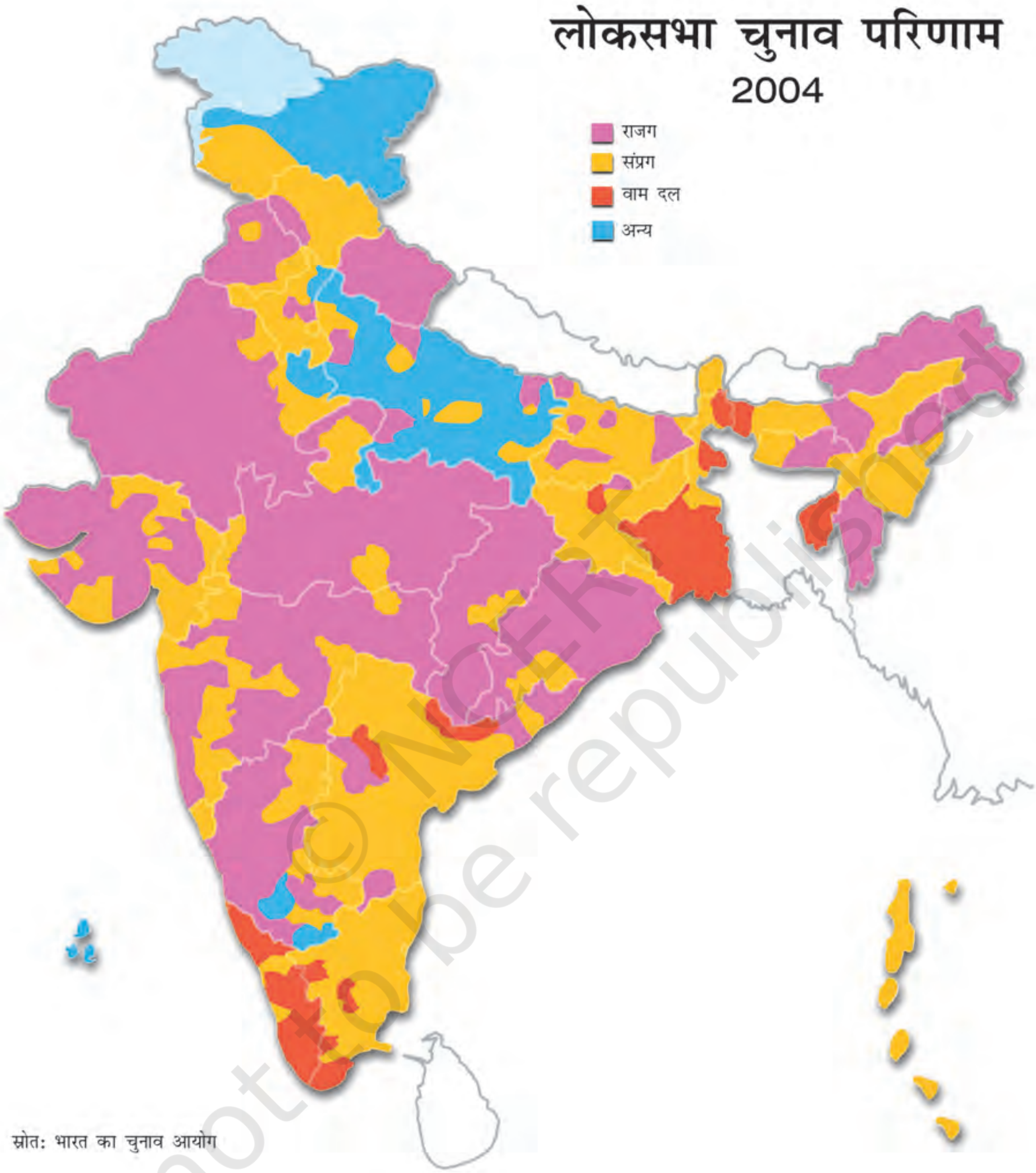

स्रोतः भारत का चुनाव आयोग

दूसरा, पिछड़ी जातियों के राजनीतिक और सामाजिक दावे की स्वीकृति : राजनीतिक दलों ने पहचान लिया है कि पिछड़ी जातियों के सामाजिक और राजनीतिक दावे को स्वीकार करने की ज़रूरत है। इस कारण आज सभी राजनीतिक दल शिक्षा और रोज़गार में पिछड़ी जातियों के लिए सीटों के आरक्षण के पक्ष में हैं। राजनीतिक दल यह भी सुनिश्चित करने के लिए तैयार हैं कि 'अन्य पिछड़ा वर्ग' को सत्ता में समुचित हिस्सेदारी मिले।

तीसरा, देश के शासन में प्रांतीय दलों की भूमिका की स्वीकृति : प्रांतीय दल और राष्ट्रीय दल का भेद अब लगातार कम होता जा रहा है। हमने इस अध्याय में देखा कि प्रांतीय दल केंद्रीय सरकार में साझीदार बन रहे हैं और इन दलों ने पिछले बीस सालों में देश की राजनीति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

चौथा, विचारधारा की जगह कार्यसिद्धि पर ज़ोर और विचारधारागत सहमति के बगैर राजनीतिक गठजोड़ : गठबंधन की राजनीति के इस दौर में राजनीतिक दल विचारधारागत अंतर की जगह सत्ता में हिस्सेदारी की बातों पर ज़ोर दे रहे हैं, जो मिसाल के लिए अधिकतर दल भाजपा की 'हिंदुत्व' की विचारधारा से सहमत नहीं हैं, लेकिन ये दल भाजपा के साथ गठबंधन में शामिल हुए और सरकार बनाई, जो पाँच साल तक चली।

ये सभी महत्त्वपूर्ण बदलाव हैं और आगामी राजनीति इन्हीं बदलावों के दायरे में आकार लेगी। भारत की राजनीति के इस अध्ययन की शुरुआत में हमने चर्चा की थी कि कांग्रेस किस तरह एक प्रभावशाली पार्टी बनकर उभरी। इस स्थिति से चलकर अब हम एक ऐसे पड़ाव पर पहुँचे हैं, जहाँ राजनीतिक प्रतिस्पर्धा कहीं ज़्यादा तेज़ है लेकिन इस प्रतिस्पर्धी राजनीति के बीच मुख्य राजनीतिक दलों में कुछेक मसलों पर सहमति है। अगर राजनीतिक दल इस सहमति के दायरे में सक्रिय हैं, तो जन आंदोलन और संगठन विकास के नए रूप, स्वप्न और तरीकों की पहचान कर रहे हैं। गरीबी, विस्थापन, न्यूनतम मज़दूरी, आजीविका और सामाजिक सुरक्षा के मसले जन आंदोलनों के ज़रिए राजनीतिक एजेंडे के रूप में सामने आ रहे हैं। ये आंदोलन राज्य को उसकी ज़िम्मेदारियों के प्रति सचेत कर रहे हैं। इसी तरह लोग जाति, लिंग, वर्ग और क्षेत्र के संदर्भ में न्याय तथा लोकतंत्र के मुद्दे उठा रहे हैं। हम विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि भारत में लोकतांत्रिक राजनीति जारी रहेगी और यह राजनीति इस अध्याय में वर्णित कुछ चीज़ों के मंथन के बीच आकार ग्रहण करेगी।

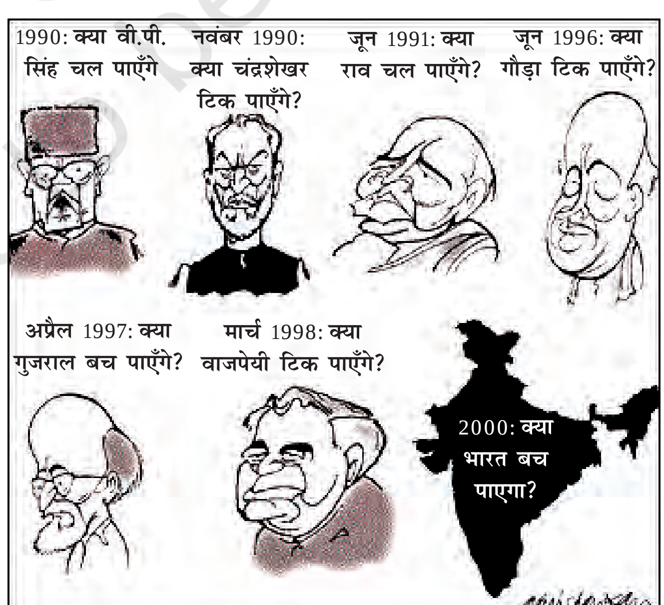

साभार: रविशंकर / इंडिया टुडे

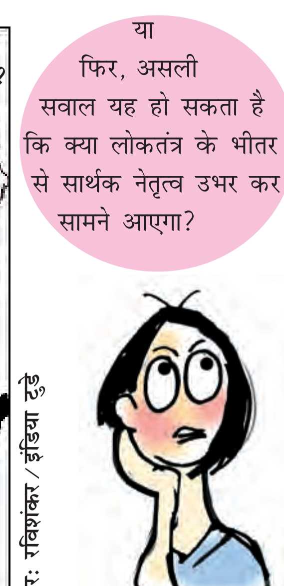

© NCERT not to be republished

प्रश्नावली

1. उन्नी-मुन्नी ने अखबार की कुछ कतरनों को बिखेर दिया है। आप इन्हें कालक्रम के अनुसार व्यवस्थित करें:

(क) मंडल आयोग की सिफारिश और आरक्षण विरोधी हंगामा
(ख) जनता दल का गठन
(ग) बाबरी मस्ज़िद का विध्वंस
(घ) इंदिरा गाँधी की हत्या
(ङ) राजग सरकार का गठन
(च) संप्रग सरकार का गठन
(छ) गोधरा की दुर्घटना और उसके परिणाम

2. निम्नलिखित में मेल करें:

(क) सर्वानुमति की राजनीति	(i) शाहबानो मामला
(ख) जाति आधारित दल	(ii) अन्य पिछड़ा वर्ग का उभार
(ग) पर्सनल लॉ और लैंगिक न्याय	(iii) गठबंधन सरकार
(घ) क्षेत्रीय पार्टियों की बढ़ती ताकत	(iv) आर्थिक नीतियों पर सहमति

3. 1989 के बाद की अवधि में भारतीय राजनीति के मुख्य मुद्दे क्या रहे हैं? इन मुद्दों से राजनीतिक दलों के आपसी जुड़ाव के क्या रूप सामने आए हैं?

4. "गठबंधन की राजनीति के इस नए दौर में राजनीतिक दल विचारधारा को आधार मानकर गठजोड़ नहीं करते हैं।" इस कथन के पक्ष या विपक्ष में आप कौन-से तर्क देंगे।

5. आपातकाल के बाद के दौर में भाजपा एक महत्त्वपूर्ण शक्ति के रूप में उभरी। इस दौर में इस पार्टी के विकास-क्रम का उल्लेख करें।

6. कांग्रेस के प्रभुत्व का दौर समाप्त हो गया है। इसके बावजूद देश की राजनीति पर कांग्रेस का असर लगातार कायम है। क्या आप इस बात से सहमत हैं? अपने उत्तर के पक्ष में तर्क दीजिए।

7. अनेक लोग सोचते हैं कि सफल लोकतंत्र के लिए दो-दलीय व्यवस्था ज़रूरी है। पिछले बीस सालों के भारतीय अनुभवों को आधार बनाकर एक लेख लिखिए और इसमें बताइए कि भारत की मौजूदा बहुदलीय व्यवस्था के क्या फ़ायदे हैं।

8. निम्नलिखित अवतरण को पढ़ें और इसके आधार पर पूछे गए प्रश्नों के उत्तर दें:
भारत की दलगत राजनीति ने कई चुनौतियों का सामना किया है। कांग्रेस-प्रणाली ने अपना खात्मा ही नहीं किया, बल्कि कांग्रेस के जमावड़े के बिखर जाने से आत्म-प्रतिनिधित्व की नयी प्रवृत्ति का भी ज़ोर बढ़ा। इससे दलगत व्यवस्था और

© NCERT not to be republished

विभिन्न हितों की समाई करने की इसकी क्षमता पर भी सवाल उठे। राजव्यवस्था के सामने एक महत्त्वपूर्ण काम एक ऐसी दलगत व्यवस्था खड़ी करने अथवा राजनीतिक दलों को गढ़ने की है, जो कारगर तरीके से विभिन्न हितों को मुखर और एकजुट करें...

– *जोया हसन*

(क) इस अध्याय को पढ़ने के बाद क्या आप दलगत व्यवस्था की चुनौतियों की सूची बना सकते हैं?
(ख) विभिन्न हितों का समाहार और उनमें एकजुटता का होना क्यों ज़रूरी है।
(ग) इस अध्याय में आपने अयोध्या विवाद के बारे में पढ़ा। इस विवाद ने भारत के राजनीतिक दलों की समाहार की क्षमता के आगे क्या चुनौती पेश की?

© NCERT not to be republished

टिप्पणी

© NCERT
not to be republished

टिप्पणी

© NCERT
not to be republished